इकाई–1
अध्याय – 1
शस्य विज्ञान, मृदा एवं बीज
(Agronomy, Soil and Seed)

1. शस्य विज्ञान (Agronomy)

परिभाषा (Definition)

विज्ञान की वह शाखा जिसमें फसल उत्पादन व मृदा प्रबन्धन के सिद्धान्तों तथा क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है – शस्य विज्ञान कहलाती है। शस्य विज्ञान (Agronomy) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द एग्रोनोमस (AGRONOMOS) से हुई है। शब्द दो शब्दों के युग्म से बना है : एग्रोस (AGROS) + नोमोस (NOMOS)। एग्रोस का अर्थ है भूमि (Field)तथा नोमोस का अर्थ है प्रबन्धन। विज्ञान की इस शाखा में भूमि प्रबन्धन के साथ–साथ फसल उत्पादन भी आधुनिक व श्रेष्ठ विधियों का संयोजन है। अतः व्यापकता में यह कहना उचित होगा कि शस्य विज्ञान भूमि प्रबन्धन व फसलोत्पादन के सिद्धान्तों का अध्ययन करने वाली विज्ञान की महत्त्वपूर्ण शाखा है।

महत्त्व व कार्य क्षेत्र (Importance and Scope)

शस्य विज्ञान को कला, विज्ञान व व्यवसाय के रूप में जाना जाता है। कृषि सम्पूर्ण जनसंख्या के जीवन का आधार है। भारतवर्ष में जनसंख्या का एक बड़ा भाग सीधे–सीधे कृषि व्यवसाय से जुड़ा है जिसमें फसलोत्पादन प्रमुख है। कृषि विज्ञान में शस्य विज्ञान का सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि खेत में उगायी जाने वाली सभी प्रकार की फसलों के उत्पादन का विज्ञान शस्य विज्ञान है।

शस्य विज्ञान में जल, वायु, भूमि एवं पौधे के वातावरण को प्रभावित करने वाले सभी कारकों का क्रमबद्ध अध्ययन एवं अनुसंधान होता है। शस्य विज्ञान द्वारा भूमि प्रबन्ध, बीज, खाद–उर्वरक, सिंचाई, खरपतवार नियंत्रण, पौध संरक्षण, आदि की फसल उत्पादन प्रयोग हेतु जानकारी मिलती हैं। शस्य विज्ञान विषय में समाहित ज्ञान व विज्ञान के माध्यम से

फसलोत्पादन को सरलता व सुगमता से सम्पादित कर अधिक से अधिक उपज ली जा सकतीहै। मानव व पशुओं की मूल आवश्यकता – खाद्यान्न, पशुचारा व वस्त्रों की आपूर्ति एक जटिल विषय है। शस्य विज्ञान सिद्धान्तों के माध्यम से फसलों की उत्पादकता में अभिवृद्धि करके इन आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। शस्य विज्ञान एक गतिक विषय है। ज्ञान के अभ्युदय के साथ–साथ पौध, पारिस्थितिकी व कृषि क्रियाओं के विकास से फसल उपज व गुणवत्ता में वृद्धि तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन ने शस्य विज्ञान को परम्परागत दायरे से बाहर निकाल कर एक नया स्वरूप प्रदान किया है। साठ के दशक में हरित क्रान्ति के सूत्रपात के बाद नई किस्मों तथा नवीन सिंचाई, उर्वरक व पौध संरक्षण प्रबन्धन का युग प्रारम्भ हुआ जिसमें शस्य विज्ञान की महती भूमिका रही। कालान्तर में जलवायु परिवर्तन व बिगड़े मृदा स्वास्थ्य के प्रसंग में फसल व मृदा प्रबन्धन में बदलाव की आवश्यकता महसूस की गई। इसी संदर्भ में शस्य विज्ञान विषय का अहम योगदान रेखांकित हुआ। शस्य विज्ञान द्वारा कर्षण, उन्नत बीज, खाद व उर्वरकों, सिंचाई व खरपतवार प्रबन्धन, फसल संरक्षण, कटाई, गहाई, भण्डारण व प्रक्रमण जैसे जटिल विषयों का समाधान कर ना केवल खाद्य सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है अपितु अधिक उत्पादन कर आय का टिकाऊ स्रोत बनाया जा सकता है। साथ ही कृषि के माध्यम से उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चितता के साथ–साथ रोजगार के अवसरों को बढ़ाया जा सकता है। अतः शस्य विज्ञान के निम्न क्षेत्र निर्धारित किये जा सकते हैं।

शस्य विज्ञान की आवश्यकता निम्न क्षेत्रों में है :–

1.कृषि उत्पादन में
2.नियोजन में
3.व्यवसाय में
4.उद्योग में।

1. कृषि उत्पादन में : फसलोत्पादन कृषि का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति का प्रथम सूचक है वहाँ का खाद्यान्न उत्पादन, उत्पादकता एवं खाद्य सुरक्षा। विभिन्न फसलों की खेती में शस्य क्रियाओं का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। खेत की तैयारी, उन्नत किस्मों का चुनाव, बुआई, पोषक तत्व प्रबन्धन, खरपतवार प्रबन्धन, सिंचाई प्रबन्धन, पौध संरक्षण, कटाई, गहाई व भण्डारण जैसे महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन उचित तरीके से करना शस्य विज्ञान की सीमा में आते हैं। दूसरे शब्दों में उचित शस्य प्रबन्धन ही फसलोत्पादन का आधार है। अनेकों प्रयोगों के सारांश को संजोते हुए प्रत्येक फसल की क्षेत्रवार अथवा जलवायु के अनुसार उन्नत कृषि विधियाँ (Improved package of practices) तैयार कर फसलोत्पादन को वैज्ञानिक आयाम दिया गया है। राष्ट्र की बढ़ती जनसंख्या के अनुरूप खाद्यान्न उत्पादित करके ही खाद्य सुरक्षा का लक्ष्य साधा जा सकता है। अविकसित देशों में किसान फसल जीवन निर्वाह के लिए उगाते हैं– वे अपनी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु या भोजन के लिए अन्न प्राप्त करने के लिए खेती करते हैं। जबकि विकासशील देशों में कुछ किसान अधिकतम मुनाफे के उद्देश्य से तथा कुछ किसान जीवन निर्वाह के लिए फसल उत्पादन करते हैं।

2. नियोजन में : हमारे राष्ट्र में वर्तमान में अनेक कृषि विश्वविद्यालय कृषि शिक्षा, शोध व प्रसार में रत है। यहाँ से जिस मानव संसाधन को विकसित किया जा रहा है उन्हें अनेक प्रकार के रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं, जैसे कि –

(i) कृषि में शिक्षण, अनुसंधान या प्रसार कार्य हेतु
(ii) बैंक में कृषि सलाहकार / कृषि अधिकारी हेतु
(iii) उर्वरक कम्पनियों में जैसे इफको, कृभको आदि में शस्य विज्ञान हेतु
(iv) नींदानाशी रसायन बनाने वाली कम्पनियों में
(v) पौध वृद्धि हेतु हारमोन्स, ऑक्सीजन, या कृषि में काम आने वाले पदार्थ / रसायन बनाने वाली कम्पनियों में।

3. व्यवसाय में : एक कृषि स्नातक जिसे शस्य विज्ञान की सिद्धि प्राप्त है, कृषि जनित व्यवसाय में एक सफल व्यक्तित्व साबित हो सकता है। कृषि से जुड़े कुछ व्यवसाय जहाँ शस्य विज्ञान अहम योगदान देता है, निम्नानुसार है –

(i) एग्रो इण्डस्ट्रीज
(ii) खाद, बीज एवं कृषि दवाओं, यंत्रों आदि का व्यापार
(iii) कृषि पैदावार का लेनदेन का व्यापार

4. उद्योग में : भारत की अर्थव्यवस्था के तीन स्तम्भ हैं– कृषि, व्यापार व उद्योग। ऐसे कई उद्योग हैं जिनमें कच्चे माल की आपूर्ति कृषि उत्पादन से ही सम्भव है। अन्य शब्दों में शस्य विज्ञान ज्ञान पर आधारित फसलोत्पादन उद्योग जगत का पूरक है। ऐसे कुछ उद्योग निम्नानुसार हैं–

(अ) विभिन्न उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ति हेतु फसलें उगाकर जैसे –

(i) डेयरी उद्योग के लिए – चारे की फसलें
(ii) गुड़, शक्कर, उद्योग के लिए – गन्ना, चुकन्दर की फसलें
(iii) वस्त्र उद्योग के लिए – कपास की फसल
(iv) बीड़ी, सिगरेट उद्योग के लिए – तम्बाकू की फसल
(v) दवा उद्योग के लिए – औषधीय पौधे उगाकर
(vi) मसाला उद्योग के लिए – जीरा, धनिया, हल्दी, मिर्च, अजवायन आदि फसलें।

(ब) फसल उत्पादन में प्रयोग किये जाने वाले साधनों के लिए नये उद्योग

(i) खाद–उर्वरक उद्योग
(ii) बीज उत्पादन उद्योग
(iii) पौध संरक्षण रसायन उद्योग
(iv) पौध वृद्धि कारक रसायन उद्योग
(v) नींदानाशी रसायन उद्योग
(vi) सिंचाई के साधनों / यंत्र निर्माण उद्योग
(vii) कृषि में प्रयोग होने वाले यंत्र, औजार आदि के उद्योग

2. मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता (Soil Fertility and Productivity)

मृदा उर्वरता (Soil Fertility)

पादप वृद्धि के लिए अनुकूल दशाओं में मृदा द्वारा आवश्यक पोषक तत्वों को प्राप्य रूप, उचित मात्रा तथा उपयुक्त सन्तुलन में प्रदान करने की क्षमता को मृदा उर्वरता कहते हैं।

उपजाऊ भूमि के लिए आवश्यक तत्वों के साथ–साथ भूमि की भौतिक दशा, जल एवं वायु का अनुपात, जीवाणुओं की क्रियाशीलता तथा उपयुक्त तापक्रम का होना भी आवश्यक है। सामान्यतया उपजाऊ मृदायें उत्पादक होनी चाहिए किन्तु यह तथ्य सभी दशाओं में सत्य नहीं है। मौसम की प्रतिकूल दशाओं जैसे कि– ओले, पाला, तूफान तथा बीमारियों आदि द्वारा फसल नष्ट हो जाए तो भूमि उपजाऊ होते हुए भी उत्पादक नहीं कहलाएगी।

मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाले कारक

(अ) प्राकृतिक कारक (Natural factors)

ये वे कारक हैं जो मृदा निर्माण को प्रभावित करते हैं। ये कारक निम्नलिखित हैं –

1. **पैतृक पदार्थ (Parent material) :** मृदा की उर्वरता पैतृक पदार्थ पर निर्भर करती है। यदि पैतृक पदार्थ में पौधों के पोषक तत्व अधिक हैं तो उनसे निर्मित मृदायें प्रायः उपजाऊ होती हैं। अम्लीय आग्नेय चट्टानों और बालू पत्थर के अपक्षय द्वारा बलुई मृदाओं का निर्माण होता है। इनमें क्षार की मात्रा कम पायी जाती है। इन मृदाओं की उर्वरता अपेक्षाकृत कम होती है। क्षारीय और अवसादी चट्टानों के अपक्षय से भारी मृदाओं का निर्माण होता है, जिनमें क्षार की मात्रा अधिक पायी जाती है और इन मृदाओं की उर्वरता भी अधिक होती है।
2. **स्थलाकृति (Topography) :** ढालू पहाड़ी क्षेत्रों की मृदाएँ अपक्षालन एवं मृदा क्षरण के कारण कम उपजाऊ होती हैं। निचले भागों की मृदाओं में ऊँचे स्थानों की मृदाओं के पोषक तत्व एवं कार्बनिक पदार्थ पानी के साथ बहकर एकत्रित हो जाते हैं, इसलिए ये मृदायें अधिक उपजाऊ होती हैं। इस प्रकार पहाड़ी प्रदेशों एवं अन्य ऊँचे–नीचे स्थानों की मृदा उर्वरता मैदानी एवं समतल भूमि की अपेक्षा कम होती है।
3. **मृदा आयु (Soil age) :** मृदा आयु के साथ मृदा उर्वरता में कमी आ जाती है। पुरानी मृदाओं में अधिक अपक्षय, लगातार फसलों के उगाने, मृदा क्षरण एवं अपक्षालन के कारण उनकी उर्वरता नवनिर्मित मृदाओं की अपेक्षा कम होती है।
4. **जलवायु (Climate) :** अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अपक्षालन क्रिया द्वारा अधिकांश घुलनशील पोषक तत्व

निचले संस्तरों में चले जाते हैं, जिससे मृदा की ऊपरी सतह की उर्वरता कम हो जाती है। इसी प्रकार कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भूमि के क्षारीय होने का भय रहता है। अधिक तापक्रम मृदा के कार्बनिक पदार्थ का विघटन शीघ्रता एवं सरलता से कर देता है, जिससे इन क्षेत्रों की मृदा उर्वरता कम हो जाती है। अधिक तेज व शुष्क वायु के कारण भी मृदा क्षरण होता है, जिससे मृदा की उपजाऊ क्षमता घट जाती है।

5. **मृदा प्रोफाइल की गहराई (Depth of soil profile) :** गहरी मृदा उथली मृदा की अपेक्षा अधिक उपजाऊ होती है। गहरी मृदाओं में पौधों की जड़ें अधिक गहराई तक जाकर अच्छी प्रकार फैल जाती हैं और अधिक मात्रा में जल व पोषक तत्व अवशोषण कर सकती हैं। उथली मृदाओं में सूखे की स्थिति में पौधे पानी की कमी महसूस करने लग जाते हैं जिससे पौधों की वृद्धि उचित रूप में नहीं हो पाती है।

6. **मृदा की भौतिक दशा (Physical condition of soil) :** मृदा की भौतिक दशा इस प्रकार होनी चाहिए कि उसमें पौधों की बढ़वार हो सके तथा वायु एवं जल संचार पर्याप्त हो। मृदा की भौतिक दशा अच्छी होने पर उसकी जल धारण क्षमता, जीवाणुओं की क्रियाशीलता तथा जीवांश पदार्थों की सड़न बढ़ जाती है एवं जड़ों का विकास अच्छा होता है। बलुई मृदाओं में रंध्राकाश (Pores) बड़े होते हैं जिससे जल के साथ पोषक तत्व बड़ी शीघ्रता से नीचे की ओर चले जाते हैं। इस कारण इन मृदाओं की उर्वरता कम हो जाती है। इसके विपरीत बारीक कणों वाली मृदाओं जैसे सिल्ट और क्ले की उर्वरता अधिक होती है।

7. **मृदा अपरदन (Soil erosion) :** मृदा कटाव से मिट्टी के साथ–साथ पौधों के आवश्यक तत्व भी बह जाते हैं, जिससे मृदा की उर्वरता कम हो जाती है।

8. **मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा (Quantity of available nutrients in soil) :** यह देखा गया है कि विभिन्न प्रकार की मृदाओं में अन्तर्निहित पोषक तत्वों की मात्रा अलग–अलग होती है। कुछ मृदाओं में नाइट्रोजन की कमी पायी जाती है तो कुछ में फॉस्फोरस की। कुछ मृदाओं में किसी एक विशेष तत्व की अधिकता भी पायी जाती है। जिन मृदाओं में अन्तर्निहित तत्वों की मात्रा अधिक होती है उनकी उर्वरता भी अधिक होती है।

(ब) कृत्रिम कारक (Artificial factors)

1. **जलाक्रान्ति (Water logging) :** जब मृदा में फसल की आवश्यकता से अधिक जल का भराव होता है और इसके निकास का उचित प्रबन्ध नहीं होता है तो मृदा में वायु की कमी हो जाती है। इस स्थिति में विनाइट्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता है। परिणामस्वरूप मृदा उर्वरता में कमी हो जाती है। अधिक पानी भरने से मृदा की भौतिक दशा भी खराब हो जाती है तथा आवश्यक पोषक तत्व अपक्षालन द्वारा जड़ क्षेत्र से नीचे चले जाते हैं।

2. **फसल प्रणाली (Cropping system) :** यदि एक निश्चित भूभाग पर प्रति वर्ष एक ही फसल उगाई जाती है तो यह फसल प्रति वर्ष निश्चित तत्वों का शोषण करती रहती हैं जिसके फलस्वरूप इन तत्वों की मृदा में कमी हो जाती है व उर्वरता कम हो जाती है। सघन खेती करने से मृदा उर्वरता में शीघ्र गिरावट आ जाती है। जबकि वैज्ञानिक ढंग से फसल चक्र के अनुसार फसलें उगाने पर मृदा की उर्वरता बनी रहती है। फसल चक्र में दाल वाली फसलें उगाने से मृदा उर्वरता बढ़ती है।

3. **मृदा पी.एच. (Soil pH) :** मृदा उर्वरता एवं पौधों को पोषक तत्वों की प्राप्यता मृदा पी.एच. द्वारा प्रभावित होती है। अधिक अम्लीय मृदा में कैल्शियम और मैग्नीशियम की मात्रायें कम रहती हैं तथा लोहा, एल्यूमिनियम, मैंगनीज व तांबा की इतनी अधिकता हो जाती है कि इनका पौधों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत क्षारीय मृदाओं में कैल्शियम व मैग्नीशियम की मात्रा अधिक तथा लोहा, मैंगनीज व तांबे की प्राप्यता कम हो जाती है। इस प्रकार इन मृदाओं की उर्वरता भी कम होती है।

4. **मृदा सूक्ष्म जीव (Soil micro-organisms) :** मृदा में उपस्थित मुख्य सूक्ष्म जीव शैवाल, कवक, एक्टीनोमाइसिटीज तथा जीवाणु हैं। शैवाल में मृदा में वायु संचार को बढ़ाती है जिससे नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है। कवक तथा एक्टीनोमाइसिटीज जटिल कार्बनिक पदार्थों का विच्छेदन कर ह्यूमस बनाने में सहायता करते हैं। ये मृदा में कार्बनिक पदार्थों को संचित करके मृदा उर्वरता को बनाये रखते हैं। राइजोबियम जीवाणु वायुमण्डल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधों को प्राप्य अवस्था में प्रदान करते हैं। इस प्रकार भूमि में सूक्ष्म जीव जितने अधिक क्रियाशील होंगे उतनी ही अधिक भूमि उपजाऊ होगी।

5. **मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा (Organic matter content in soil) :** कार्बनिक पदार्थ सड़ने पर पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं। अतः जिन मृदाओं में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होती है उनकी उर्वरा शक्ति भी अधिक होती है। चिकनी मृदा बलुई मृदा की अपेक्षा अधिक उपजाऊ होती है।

6. **मृदा जुताई की विधि व समय (Method and time of ploughing) :** ढालू खेतों की जुताई ढाल के लम्बवत् करने से मृदा कटाव कम होता है और पोषक तत्व पानी

के साथ बहकर खेत से बाहर नहीं जाते हैं। आवश्यकता से अधिक जुताई करना हानिकारक होता है क्योंकि अधिक ताप से कार्बनिक पदार्थ जल जाता है तथा भौतिक दशा पर कुप्रभाव पड़ता है। भूमि को उचित गहराई तक समय पर जोतने से उसकी उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है।

मृदा उत्पादकता (Soil Productivity)

मृदा उत्पादकता का अभिप्राय उसकी प्रति हैक्टर पैदावार देने की क्षमता से है। इसको साधारणतया रुपयों में या प्रति हैक्टर उपज के रूप में व्यक्त हैं। उत्पादन कई वृद्धि कारकों के पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर करता है। अधिकतम उत्पादन के लिए सभी कारकों का पौधों की वृद्धि के लिए उपयुक्त दशा में होना अति आवश्यक है। सभी कारकों में फसल उत्पादन के लिए मुख्य कारक मृदा है।

कोई भी उपजाऊ भूमि उत्पादक हो यह आवश्यक नहीं है लेकिन उत्पादक भूमि के लिए इसका उपजाऊ होना आवश्यक है। यदि भूमि उपजाऊ नहीं है तो वह पौधों को आवश्यक तत्व प्रदान करने में असमर्थ है। परिणामस्वरूप उपज घट जाती है और भूमि की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है। इसके विपरीत भूमि उत्पादक न होते हुए उपजाऊ हो सकती है जैसे – भूमि पर फसल खड़ी है यह भूमि की उर्वरा शक्ति को दर्शाती है, लेकिन अगर फसल प्रतिकूल दशाओं के कारण नष्ट हो जाये तो भूमि उपजाऊ होते हुए भी उत्पादक नहीं मानी जायेगी। इसलिए भूमि की उत्पादकता का अधिक या कम होना केवल उसकी उर्वरा शक्ति पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि सभी दशाओं की अनुकूलता व प्रतिकूलता पर भी निर्भर करता है।

मृदा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक

1. **मृदा उर्वरता (Soil fertility) :** मृदा में यदि पौधों की वृद्धि के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा, अनुपात एवं प्राप्य अवस्था में उपस्थित होते हैं तो मृदा उपजाऊ होती है और उसकी उत्पादकता भी अधिक होती है।
2. **मृदा की भौतिक दशा (Physical status of soil) :** मृदा की उपयुक्त भौतिक दशा में पौधों की वृद्धि अच्छी होती है जिससे पैदावार अधिक होती है। मृदा की संरचना, कणाकार, जल धारण क्षमता, वायु संचार आदि मुख्य भौतिक गुण हैं।
3. **मृदा की स्थिति (Soil location) :** अन्य कारकों के समान होने पर शहर के पास वाली मृदा अधिक उत्पादक होती है क्योंकि शहर के पास होने के कारण उत्पादकों को फसल को शहर में बेचने की सुविधा मिल जाती है और अधिक मूल्य प्राप्त होता है।
4. **उत्पाद की माँग (Product demand) :** किसी वस्तु का उत्पादन समान हो और माँग बढ़ती है तो उस वस्तु का प्रति इकाई मूल्य बढ़ जाता है जिससे लाभ अधिक होगा, फलस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि होगी।
5. **यातायात के साधन (Transport facility) :** यातायात की अच्छी सुविधा होने पर उत्पादन व्यय कम होगा तथा लाभ अधिक होगा, फलस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि होगी।
6. **अन्य कारक (Other factors) :** अन्य कारक जैसे मौसम की प्रतिकूल दशा, कीट तथा बीमारियों का आक्रमण, जानवरों द्वारा फसलों को नुकसान पहुँचाना, समय पर कृषि–क्रियाएँ नहीं करना आदि मृदा की उत्पादकता को कम करते हैं।

मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता में अन्तर

मृदा उर्वरता	मृदा उत्पादकता
1. मृदा उर्वरता का सम्बन्ध पौधों के आवश्यक पोषक तत्वों की उचित मात्रा, सही अनुपात एवं उपलब्ध कराने की क्षमता से है।	1. मृदा उत्पादकता का सम्बन्ध प्रति हैक्टर भूमि से फसल उत्पादन क्षमता से है।
2. उर्वर मृदा उत्पादक हो भी सकती है और नहीं भी।	2. उत्पादक मृदा हमेशा उर्वर होगी।
3. मृदा की भौतिक दशा, रासायनिक स्थिति, पौधों के पोषक तत्वों की मात्रा व उनका सन्तुलन मृदा उर्वरता को निर्धारित करते हैं।	3. मृदा की उर्वरता, परिवहन व्यय, उपज की माँग तथा फसल पैदा करने में व्यय मृदा उत्पादकता को निर्धारित करते हैं।
4. मृदा उर्वरता की प्रयोगशाला में जाँच की जा सकती है।	4. मृदा उत्पादकता की जाँच खेत में प्राप्त उत्पादन से कर सकते हैं प्रयोगशाला में नहीं।
5. मृदा उर्वरता मृदा उत्पादकता का एक मुख्य अंग है। उर्वरता के अन्तर्गत आर्थिक नियम, माँग, पूर्ति, उत्पादन व्यय व उपज के मूल्य का विचार नगण्य है।	5. मृदा उत्पादकता एक व्यापक शब्द है, जिसके अन्तर्गत भौतिक क्रियायें व आर्थिक नियम सम्मिलित हैं।

3. मृदा क्षरण एवं संरक्षण (Soil Erosion and Conservation)

प्रति वर्ष कुछ प्राकृतिक शक्तियों, मुख्य रूप से जल एवं वायु द्वारा मृदा की ऊपरी परत बहकर या उड़कर दूसरे स्थानों पर स्थानान्तरित होती रहती है। इसके साथ ही पेड़–पौधे जितना पोषक पदार्थ मृदा से अपने भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं उसका कई गुना अधिक पोषक पदार्थ मृदा से बहकर या उड़कर नष्ट हो जाता है। इसलिए मृदा क्षरण को रोकने के लिए मृदा का

संरक्षण किया जाना चाहिए ताकि पौधों को मृदा से आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति होती रहे तथा मृदा उर्वरा शक्ति भी बनी रहे।

"भौतिक रूप से मिट्टी के कणों का अपने स्थान से हटने की क्रिया को मृदा क्षरण कहते हैं।" मृदा का पृथक्करण तथा परिवहन मृदा क्षरण कहलाता है। अधिकांश दशाओं में जल परिवहन कारक होता है लेकिन हवा भी यह कार्य करती है। "मृदा को विभिन्न क्षरण शक्तियों द्वारा बहने तथा कटने से बचाने की क्रिया को मृदा संरक्षण कहते हैं।"

मृदा क्षरण के प्रकार : प्रकृति में दो प्रकार से मृदा क्षरण होता है –

1. **प्राकृतिक क्षरण (Natural erosion) :** वनस्पति से ढकी हुई मृदा के प्राकृतिक रूप से हवा तथा जल द्वारा लगातार और धीरे–धीरे क्षरण को प्राकृतिक क्षरण कहते हैं। यह क्षरण मृदा निर्माण तथा मृदा विनाश की क्रियाओं में सदैव साम्य रखता है। इससे कोई विशेष हानि नहीं होती क्योंकि परिवर्तन में बहुत समय लगता है। इस क्षरण को मनुष्य द्वारा नहीं रोका जा सकता है।
2. **त्वरित क्षरण (Accelerated erosion) :** जब भूमि की वनस्पति को पशुओं द्वारा चराकर, खोदकर या जोतकर समाप्त कर दिया जाता है तो भूमि वनस्पति–विहीन हो जाती है। ऐसी मिट्टी में पानी व हवा के विघ्न द्वारा अलग होने की गति मृदा निर्माण से कहीं ज्यादा होती है। इस प्रकार के मृदा क्षरण को त्वरित क्षरण कहते हैं।

मृदा क्षरण दो शक्तियों के द्वारा होता है – 1. जल 2. वायु

1. **जल द्वारा क्षरण (Water Erosion)**

आवरण रहित नग्न भूमि पर जब वर्षा की बूँदें गिरती हैं तो उनकी चोट से मृदा कण तितर–बितर हो बिखर जाते हैं और गंदले पानी के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं। इस प्रकार खेत की उपजाऊ मिट्टी का जल के साथ क्षरण हो जाता है। जल द्वारा मृदा के कटने व बहने की क्रिया को जलीय क्षरण कहते हैं। जल द्वारा मृदा क्षरण निम्न प्रकार का होता है –

(अ) **बौछार क्षरण (Spalash erosion) :** यह मृदा क्षरण की प्रारम्भिक अवस्था है। जब वर्षा की बूँदें जमीन पर गिरती हैं तो ये मृदा कणों को मूल स्थान से छिन्न–भिन्न कर देती हैं। इससे भूमि की जल प्रवेश क्षमता भी कम हो जाती है। यह क्षरण वर्षा की बूँदों के आकार एवं गहनता से प्रभावित होता है।

(ब) **परत क्षरण (Sheet erosion) :** बूँदों द्वारा कणों के बिखरने के पश्चात् वर्षा का जल पूर्ण सतह पर मिट्टी की पतली तह को अपने साथ बहा ले जाता है। इस प्रकार खेत की उपजाऊ मृदा की ऊपरी तह समान रूप से खेत से बह जाती है। इसको परत–क्षरण कहते हैं। यह क्षरण आँखों से तो दिखाई नहीं देता है लेकिन होता बहुत हानिकारक है।

(स) **रिल क्षरण (Rill erosion) :** परत क्षरण समतल भूमि में होता है लेकिन पूरा खेत बिल्कुल समतल तो होता नहीं, उसमें कहीं न कहीं ढाल जरूर होता है। जब पानी ढाल की ओर बहने लगता है तो खेत में छोटी–छोटी नालियाँ बन जाती हैं। ये नालियाँ धीरे–धीरे चौड़ी होने लगती हैं, हालांकि ये नालियाँ जुताई के समय समाप्त हो जाती हैं। नर्म व तुरन्त जोते गये खेत में यह क्षरण ज्यादा होता है। ढलान वाली व खाली भूमि में भी यह क्षरण ज्यादा होता है।

(द) **अवनालिका क्षरण (Gully erosion) :** यह रिल–क्षरण की बढ़ती अवस्था है। जब ढाल अधिक होता है तो रिल क्षरण द्वारा बनायी गई नालियाँ इतनी चौड़ी और गहरी हो जाती हैं कि उपजाऊ मिट्टी के कटने के बाद अधो मृदा भी कटने लगती है। इस प्रकार के कटाव को अवनालिका या नालीदार क्षरण कहते हैं। ये नालियाँ साधारण जुताई आदि के द्वारा समाप्त नहीं होती हैं। इन मृदाओं में कृषि कार्य करना कठिन होता है।

जलीय क्षरण को प्रभावित करने वाले कारक

1. **जलवायु (Climate) :** वर्षा की गहनता, अवधि तथा आवृत्ति का मृदा क्षरण पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि वर्षा की गहनता कम हो तो ज्यादा समय तक वर्षा होने पर भी क्षरण कम होता है। इसी प्रकार गहनता के साथ थोड़े समय में होने वाली वर्षा से भी क्षरण अधिक नहीं होता है। यदि वर्षा की मात्रा और गहनता दोनों ही अधिक हो तो मृदा क्षरण अधिक होगा। अधिक तापक्रम मूल पदार्थों के रासायनिक एवं भौतिक अपक्षय में सहायक होता है जिससे भूमि तथा चट्टानों में टूट–फूट होती हैं। इस कारण क्षरण शुरू हो जाता है।
2. **स्थलाकृति (Topography) :** ढालू भूमि पर क्षरण ज्यादा होता है, क्योंकि पानी के बहने की गति तेज होती है। उसकी मिट्टी काटने व बहाने की शक्ति बढ़ जाती है। अधिक ढाल पर जल को भूमि में सोखने का कम समय मिलता है। ढाल की लम्बाई जितनी ज्यादा होगी उतना ही कटाव ज्यादा होगा।
3. **मृदा गुण (Soil characteristics) :** बलुई मृदा के कणों का बिखराव ज्यादा होता है, जबकि मटियार भूमि के कण आपस में अधिक दृढ़ता के साथ चिपके रहते हैं। ऊसर भूमि पानी में शीघ्र घुल जाती है और पानी के साथ बह जाती है। बलुई मृदा पानी को कम सोख पाती है। लेकिन मटियार भूमि में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होने से जल शोषण क्षमता और कणों को बाँधने की क्षमता बढ़

जाती है, जिससे पानी के बहाव द्वारा कम कटती है।

4. **वनस्पति का प्रभाव (Plant effect) :** जितने अधिक पेड़–पौधे उतना ही अधिक जल मिट्टी द्वारा सोखा जायेगा। पेड़ व घास की जड़ें मृदा कणों को आपस में बाँधे रखती हैं और पत्तियाँ वर्षा की बूँदों को मृदा कणों से टकराने से पहले ही रोक देती हैं। इस प्रकार वनस्पति भूमि क्षरण को कम करने में सहायक होती है।

5. **मानवीय कारक (Human factor) :** मनुष्य द्वारा खेती का सही ढंग न अपनाने से भी मृदा क्षरण अधिक होता है। ढालू भूमियों पर ढाल की दिशा में कृषि कार्य करना, नदी किनारे तक खेती करना, खाद का प्रयोग किये बिना लम्बे समय तक एक ही फसल उगाना आदि ऐसे मानवीय कारक हैं, जो जलीय क्षरण को बढ़ावा देते हैं।

जलीय क्षरण को रोकने की विधियाँ : वे विधियाँ जो भू–क्षरण रोकने तथा जल संरक्षण के लिए अपनायी जाती हैं, मृदा संरक्षण विधियाँ कहलाती हैं। वे मुख्यतया निम्न हैं –

1. **मृदा संरक्षण की जैविक विधियाँ (Biological methods)**

(अ) **सस्य सम्बन्धी विधियाँ (Agronomic methods)**

1. **समोच्च खेती (Contour farming) :** समान ऊँचाई की भूमि पर बनी हुई रेखा को कन्टूर कहते हैं। समस्त कृषि कार्य और फसलों की बुआई ढाल के विपरीत करते हैं। यदि ढाल अधिक है तो कन्टूर की दूरी कम होगी और यदि ढाल कम हो तो कन्टूर के आपस की दूरी अधिक हो सकती है। ढालू जमीन पर कन्टूर बनाने से वर्षा का पानी रूक–रूक कर आगे बढ़ता है जिसे मृदा द्वारा सोख लिया जाता है और बाहर कम बह पाता है। अतः मृदा क्षरण नहीं होता है।

2. **भू–परिष्करण (Tillage) :** भू–परिष्करण की सही विधियाँ और औजारों के अपनाने से मृदा की संरचना ठीक हो जाती है। बारानी क्षेत्रों में गहरी जुताई करनी चाहिए ताकि खरपतवार नष्ट हो जाये तथा मृदा में पानी का अवशोषण अधिक हो। इससे भू–क्षरण कम हो पाता है।

3. **पलवार (Mulching) :** खेत को घास तथा पौधों के डंठलों द्वारा ढक कर मृदा क्षरण को काफी कम किया जा सकता है। पलवार वर्षा की बूँदों का मृदा पर सीधे प्रहार को कम करता है तथा जड़ें, तने, पत्तियाँ आदि मृदा की सतह पर पानी बहने के वेग को कम करते हैं। साथ ही मृदा संरचना को भी सुधारते हैं।

4. **फसल चक्र (Crop rotation) :** मृदा संरक्षण के लिए अपनाये गये फसल चक्रों में यह सिद्धान्त रखा जाता है कि अधिकाधिक समय तक घास एवं दलहनी फसलों के मिश्रण से भूमि को आच्छादित रखा जाये। उपयुक्त फसल चक्र अपनाने से क्षरण कम होता है। जल का अच्छा संरक्षण हो जाता है और मिट्टी का उपजाऊपन भी सुधरता है।

5. **पट्टियों में फसल बोना (Sowing of crops in strips):** इस प्रणाली में फसलें ढाल के विपरीत समानान्तर पट्टियों में भू–क्षरण अवरोधी (घनी उगने वाली फसलें) तथा निराई–गुड़ाई चाहने वाली फसलें एकान्तर पट्टियों में उगायी जाती हैं। जिससे ऊपर से बहकर आयी मिट्टी और पानी रूकते रहते हैं और क्षरण नहीं हो पाता है।

(ब) **घास सम्बन्धी उपाय (Grass related measures) :** उगायी गई क्षेत्रीय फसलों के मध्य घास की पट्टियाँ बो देने से मृदा संरक्षण में मदद मिलती है। फसल चक्र में अन्य फसलों के साथ घास को भी उगाने की विधि को ले फार्मिंग (Lay farming) कहते हैं। यह विधि मृदा एवं जल संरक्षण में सहायक होती है। अगर बड़े क्षेत्र में क्षरण की समस्या हो तो उर्वरकों की उपयुक्त मात्रा डालते हुए कुछ समय तक घासें ही उगानी चाहिए। मुख्य घासें ब्लू पैनिक, नेपियर, दूब, अंजन आदि हैं।

(स) **वृक्षारोपण (Tree plantation) :** वृक्ष मृदा क्षरण के रोकने के अच्छे साधन हैं। वृक्ष वर्षा की बूँदों को सीधे जमीन पर नहीं गिरने देते तथा पानी की चोट को स्वयं सहन करते हैं। जमीन पर पानी के बहाव को रोकते हैं। वृक्षों की पत्तियाँ मल्च का काम करती हैं और भूमि को जीवांश भी प्रदान करती हैं जिससे मृदा की भौतिक दशा में सुधार होता है।

2. **मृदा संरक्षण की यांत्रिक विधियाँ (Mechanical methods)**

(अ) **क्यारी या थाला बनाना :** बेसिन लिस्टर (Basin lister) की सहायता से कन्टूर के समानान्तर थालों का निर्माण करते हैं यह थाला जल को रोककर उसके बहाव की गति कम कर देता है और जल संरक्षण में सहायक होता है।

(ब) **अधो–भूमि की गहरी जुताई :** सब सोइलर (Sub-soiler) की सहायता से कठोर परत को तोड़कर मृदा की जल शोषित एवं जल धारण क्षमता को बढ़ाते हैं जिससे वर्षा के जल का संरक्षण किया जा सकता है।

(स) **कन्टूर टैरेस बनाना :** जब ढालू भूमि पर खेती की जाती है तो खेत टैरेस या चबूतरे की भांति बनाये जाते हैं जिससे जुताई, बुआई आदि बराबर टुकड़ों पर हो सके। ये टैरेस बहाव को सीधा ढाल की ओर रोकते हैं, जल शोषण को बढ़ाते हैं, अतिरिक्त जल को नाली द्वारा बाहर निकाल देते हैं, अधिक ढालू भूमि को खेती योग्य बनाते हैं तथा मृदा क्षरण को नियंत्रित करते हैं।

(द) **कन्टूर खाई बनाना :** 60 से.मी. चौड़ी, 30 से.मी. गहरी तथा उपयुक्त लम्बाई की खाइयाँ उचित अन्तराल पर खोदी जाती हैं इन खाइयों में पेड़ों की रोपाई की जाती है।

2. **वायु द्वारा क्षरण (Wind Erosion)**

तेज हवा या आँधी से मृदा कण एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने की क्रिया को वायवीय क्षरण कहते हैं। यह क्षरण शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों से ज्यादा होता है जहाँ वनस्पति नहीं के बराबर पाई जाती है। राजस्थान का उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र मरूस्थल के रूप में होने से वर्षा बहुत कम होती है और प्राकृतिक वनस्पति का अभाव है। मार्च से जून तक तेज हवाएँ चलती हैं जिनके कारण यह क्षेत्र वायु क्षरण से प्रभावित है। जो वनस्पति है भी, उस पर अनियंत्रित व अत्यधिक पशुओं की चराई व कृषि के गलत तरीके अपनाने से यह समस्या बढ़ती ही जा रही है। इस क्षरण द्वारा लाखों टन उपजाऊ मिट्टी उड़कर बाहर चली जाती है और मृदा उर्वरता का ह्रास हो जाता है। वायु द्वारा मृदा का परिवहन तीन प्रकार से होता है –

(अ) **उच्छलन (Saltation) :** जब हवा का सीधा दबाव मृदा कणों पर पड़ता है तो मुख्यतः 0.1 से 0.5 मि.मी. व्यास वाले कण अपने स्थान से ऊपर उछलने लगते हैं और थोड़े चलकर नीचे गिर जाते हैं। मृदा कणों के इस तरह छोटे–छोटे उछालों की क्रिया को उच्छलन कहते हैं। मृदा क्षरण में भार की दृष्टि से 50–75 प्रतिशत भाग इस क्रिया द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है।

(ब) **निलम्बन (Suspension) :** इस क्रिया में मृदा के और भी छोटे कण जिनका व्यास 0.1 मि.मी. यो इससे कम होता है, हवा के साथ उड़कर वातावरण में लटके रहते हैं और हवा की गति के साथ हजारों कि.मी. दूर तक स्थानान्तरित हो जाते हैं।

(स) **सतह–सर्पण (Surface creep) :** मृदा कण जिनका व्यास 0.5 मि.मी. से अधिक होता है जो वायु की गति के साथ ऊपर नहीं उठ सकते हैं, भूमि सतह पर रेंगकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित हो जाते हैं। इस क्रिया को सतह–सर्पण कहते हैं।

वायु द्वारा मृदा क्षरण को प्रभावित करने वाले कारक

1. **जलवायु (Climate) :** शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में जहाँ कम वर्षा, अधिक ताप व वायु की गति तेज हो तो वायु क्षरण अधिक होगा। इसके विपरीत आर्द्र एवं शीतोष्ण जलवायु में वायु क्षरण कम होता है।

2. **मृदा (Soil) :** मृदा के भौतिक गुण जैसे कणाकार, घनत्व तथा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा, नमी की मात्रा आदि वायु द्वारा क्षरण को प्रभावित करते हैं। क्ले मृदाओं में जीवांश की मात्रा अधिक होने व चिकनी सतह के कारण क्षरण कम होता है। लेकिन बलुई मृदाओं की सतह खुरदरी व कण एक–दूसरे से अलग रहते हैं। अतः वायु द्वारा क्षरण अधिक होता है।

3. **वनस्पति (Vegetation) :** वनस्पति से आच्छादित मृदाओं में वायु क्षरण नहीं के बराबर होता है लेकिन वनस्पतिविहीन मृदाओं में क्षरण अधिक होता है।

4. **स्थलाकृति (Topography) :** ढालू भूमियों में समतल भूमियों की अपेक्षा मृदा क्षरण अधिक होता है।

वायवीय क्षरण नियंत्रण के सिद्धान्त

वायु द्वारा मृदा क्षरण रोकने के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

1. वायु के वेग को कम करना,
2. मृदा कण समूह का आकार बढ़ाना, तथा
3. मृदा सतह को नम रखना।

उपर्युक्त सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर वायवीय क्षरण को निम्नलिखित विधियों द्वारा रोका जा सकता है –

1. **कृषि क्रियाएँ :**
   - **i)** मृदा में जीवांश खादों का प्रयोग करना चाहिए।
   - **ii)** मृदा में हरी खाद वाली फसलों का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि ये फसलें उर्वरता बढ़ाने, कणों को बाँधकर रखने तथा नमी की मात्रा संचित रखने में सहायक होती हैं।
   - **iii)** मृदा सतह पर पलवार (Mulch) का प्रयोग करना चाहिए।
   - **iv)** भू–परिष्करण (Tillage) द्वारा मृदा वाष्पीकरण कम करके नमी बनाये रखनी चाहिए।
   - **v)** फसल चक्र (Crop rotation) में दाल वाली फसलें तथा घासों को सम्मिलित करना चाहिए, क्योंकि ये मृदा संरक्षी फसलें हैं जो मृदा क्षरण को कम करती हैं।
   - **vi)** भूमि को पड़ती नहीं छोड़ना चाहिए।
   - **vii)** पशुओं की चराई बन्द कर देनी चाहिए, ताकि भूमि पर घास हमेशा बनी रह सकें।

2. **वायुरोधी वृक्ष पट्टियाँ :** वायु की गति मन्द करने के लिए जिस दशा से हवायें आती हैं उनके समकोण विपरीत दिशा में वृक्षों, झाड़ियों तथा घासों की सुनियोजित पट्टियाँ लगाते हैं। ये पट्टियाँ मृदा क्षरण को काफी कम कर देती हैं और सतह से वाष्पीकरण को रोकती हैं। इनकी कई आकृतियाँ हो सकती हैं लेकिन सबसे अच्छी पट्टी पिरेमिड आकार की होती है। जिसमें अन्दर की लाइन में शीघ्र बढ़ने वाले, दूसरी लाइन में कम बढ़ने वाले व तीसरी लाइन में सबसे कम बढ़ने वाले पेड़ या घासें होती हैं। इस प्रकार हवा आने की दिशा में छोटे वृक्ष, बीच में थोड़े बड़े व हवा जाने वाली दिशा में सबसे बड़े वृक्ष लगाये जाते हैं। पट्टियों की आपस में दूरी 3–4 मीटर एवं पेड़ से पेड़ की दूरी 1–2 मी. रखी जाती है। सघनता को ध्यान में रखते

हुए पट्टियों में वृक्षों की ऐसी जातियाँ जिनमें कम से कम वायु निकल सके, प्रयोग में लाई जाती हैं। इसके लिए बबूल, नीम, शीशम, जामुन, इमली, बेर, अमलताश आदि प्रमुख वृक्ष हैं।

3. **मिट्टी के टीलों को आच्छादित रखना :** मिट्टी के टीलों पर क्षेत्रीय झाड़ियाँ लगा देनी चाहिए जो कि पलवार (Mulch) का काम करती हैं तथा मिट्टी के उड़ने में बाधा डालती हैं जिससे टीले एक ही जगह स्थिर रहते हैं। उदाहरण के लिए खीप, झड़बेरी, फोग, बुई आदि झाड़ियाँ उपयोगी पाई गयी हैं।

4. अन्य : रेगिस्तानी क्षेत्र में उगने वाले पेड़, झाड़ियाँ तथा घासें वायु क्षरण रोकने में सहायक हैं–

वृक्ष (Trees)

खेजड़ी (*Prosopis cineraria*)
शीशम (*Dalbergia sissoo*)
रोहिड़ा (*Tecomella undulata*)
विलायती बबूल (*Prosopis juliflora*)
इज़राइली बबूल (*Acacia tortalis*)

झाड़ियाँ (Shrubs)

खींप (*Leptodenia pyrotechnica*)
फोग (*Calligonum polygonoides*)
अरण्डी (*Ricinus communis*)
झरबेरी (*Zizyphus rotundifolia*)

घासें (Grasses)

सेवन (*Lasiurus sindicus*)
अंजन घास (*Cenchrus ciliaris*)

4. बीज (Seed)

फसलोत्पादन में बीज का सर्वोपरि स्थान है। फसल उत्पादन की सफलता मुख्य रूप से गुणवत्ता युक्त बीजों के प्रयोग पर निर्भर करती है। कृषि उत्पादन में अन्य आदानों जैसे सिंचाई, खाद, शाकनाशी, कवकनाशी, कीटनाशी इत्यादि की सफलता भी बीज की गुणवत्ता एवं ओज क्षमता पर आधारित होती है। यदि बीज की स्थिति संदिग्ध है तो अन्य आदानों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता क्योंकि बीज सही एवं विश्वसनीय नहीं होगा तो फसल उत्पादन के अन्य सभी प्रयास विफल हो जाते हैं। अतः अधिक उपज लेने के लिए उत्तम किस्म के बीजों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। अभी देश के किसानों को 12 प्रतिशत उन्नत बीज ही उपलब्ध हो रहा है इसलिए गुणवत्ता युक्त बीजों के उत्पादन एवं वितरण को बढ़ाने की आवश्यकता है।

बीज की परिभाषा (Definition of seed)

दाना, फल, पत्ती, जड़ अथवा तने का वह भाग जो अपने समान रूप के स्वस्थ पौधे को जन्म देता है बीज कहलाता है। तकनीकी दृष्टि से पुष्प के परिपक्व बीजाण्ड को ही बीज कहते हैं जिसमें सूक्ष्म भ्रूण व भ्रूणपोष सुरक्षात्मक आवरण से ढका रहता है। साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि जीवित भ्रूण वाला दाना ही बीज है जो बुवाई के काम आता है।

उत्तम बीज के गुण (Characteristics of good quality seed) : वह किस्म जो स्थानीय किस्म के मुकाबले 10–15 प्रतिशत अधिक उपज देती हो एवं विभिन्न प्रकार की जलवायु व मिट्टी के प्रति अनुकूल हो तथा निश्चित समय पर परिपक्व अवस्था में पहुँचती हो, उन्नत किस्म कहलाती है। उन्नत किस्म के बीज में निम्न गुण होने चाहिए –

1. **आनुवंशिक शुद्धता (Genetic purity) :** उत्तम बीज का मुख्य लक्षण उसकी आनुवंशिक शुद्धता है। अतः शुद्ध व प्रमाणित बीज में अपनी किस्म के अनुरूप आकार–प्रकार, रंग–रूप एवं वजन के सभी लक्षण पाये जाने चाहिए। बीज आकार व रंग में एक समान व चमकीले होने चाहिए।
2. **भौतिक शुद्धता (Physical purity) :** उत्तम बीज भौतिक रूप से शुद्ध होना चाहिए। उसमें अन्य फसलों, किस्मों तथा खरपतवार के बीजों की मिलावट नहीं होनी चाहिए। बीज में कंकर–पत्थर, मिट्टी, कूड़ा–कचरा, फसल के अवशेष, भूसा आदि भी नहीं होने चाहिए। मिलावट होने से खेत में वांछित फसल व किस्म के पौधों की संख्या घट जाती है, खरपतवार के पौधे फसल से प्रतियोगिता करते हैं जिससे उपज कम प्राप्त होती है व उत्पादन की गुणवत्ता घट जाती है।
3. **बीज ओज (Seed vigour) :** बीज ओज से तात्पर्य बीज की उम्र, आकृतिक तथा क्रियात्मक स्वस्थ्यता से है जिसमें तीव्रता से समान अंकुरण व पौधों का विकास होता है। उत्तम बीज में पर्याप्त ओज होता है, जिससे पौधे की बढ़वार तेज गति से होती है। बीज ओज अच्छा नहीं होने पर पौधों की बढ़वार धीमी गति से होती है जिससे फसल की उपज व गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पुराने बीजों की अंकुरण शक्ति कम होती है अर्थात् उम्र के साथ ओज घटता जाता है।
4. **उच्च अंकुरण क्षमता (High germinability) :** उत्तम बीज में उच्च अंकुरण क्षमता होनी चाहिए। अंकुरण क्षमता का खेत में उगे पौधों की संख्या एवं फसल की उपज से सीधा सम्बन्ध है। बीज की सही मात्रा, उसकी अंकुरण प्रतिशत के आधार पर तय होती है। इसलिए अंकुरण क्षमता की जानकारी करके ही बीजों की बुआई करनी चाहिए जिससे खेत में वांछित संख्या में पौधे मिल सके। यह सर्वमान्य है कि कम आयु वाले (नये) चमकदार, स्वस्थ तथा सुडौल बीजों का अंकुरण पुराने, बदरंग, कटे–फटे रोगग्रस्त बीजों की अपेक्षा अधिक होता है। कुछ प्रमुख फसलों के बीजों की न्यूनतम अंकुरण क्षमता इस प्रकार है –
5. **नमी की मात्रा (Moisture content) :** उत्तम बीजों में

	फसलों का नाम	न्यूनतम अंकुरण क्षमता
1.	गेहूँ, जौ एवं चना	85 प्रतिशत
2.	धान, ज्वार, तिल, बरसीम, रिजका	80 प्रतिशत
3.	बाजरा, मूंग, मोठ, उड़द, अरहर, चंवला	75 प्रतिशत
4.	मूँगफली, सोयाबीन, सूरजमुखी, ग्वार	70 प्रतिशत
5.	कपास	65 प्रतिशत

$$\text{बीज की अंकुरण प्रतिशतता} = \frac{\text{अंकुरित बीजों की संख्या}}{\text{बोये गये बीजों की संख्या}} \times 100$$

निर्धारित मात्रा से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए। अधिक आर्द्रता के कारण बीज में कवक/कीट आदि का प्रकोप हो जाता है जिससे अंकुरण क्षमता कम हो जाती है तथा बीज ओज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अनाज के बीजों में भण्डारण के समय नमी 12 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

6. **रोगमुक्तता (Free from diseases) :** बीज निरोग, रोगाणु एवं कीट व्याधि प्रकोप रहित होने चाहिए। रोग एवं कीटग्रस्त बीज की अंकुरण क्षमता कम होती है। कई रोगों के विषाणु–जीवाणु बीजों के साथ लगे होते हैं जिससे अंकुरित होते ही पौधे रोग/कीट ग्रस्त हो जाते हैं। इसलिए उत्तम बीज सभी प्रकार के रोगों से मुक्त होना चाहिए।

7. **परिपक्वता (Maturity) :** उत्तम बीज पूर्णरूप से परिपक्व, साफ तथा सुडौल आकार का होना चाहिए। पूर्णरूप से परिपक्व बीज चमकीला, साफ एवं भरा हुआ होता है जबकि अपरिपक्व बीज सिकुड़े हुए, छोटे तथा बदरंग होते हैं। अपरिपक्व बीजों में अंकुरण कम होता है तथा पौधे प्रारम्भ से ही छोटे तथा कमजोर रह जाते हैं। उनमें जलवायु तथा मृदा की प्रतिकूल दशाओं, खरपतवार, कीट तथा रोगों से संघर्ष करने की क्षमता भी कम होती है। अतः अच्छी प्रकार से परिपक्व, साफ, गुद्देदार तथा सुडौल आकार का बीज ही बोना चाहिए।

8. **वास्तविक उपयोगिता मान (Real value) :** अच्छे बीज का वास्तविक उपयोगिता मान 75 प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए। यह अच्छे बीज का महत्वपूर्ण गुण है।

$$\text{वास्तविक उपयोगिता मान} = \frac{\text{अंकुरण प्रतिशत} \times \text{शुद्धता प्रतिशत}}{100}$$

9. **बीज की जीवन क्षमता (Seed longivity):** उत्तम बीज में जीवित भ्रूण होना चाहिए जिसमें अंकुरण क्षमता होती है। बीज में उपस्थित भ्रूण विभिन्न कारणों से क्षतिग्रस्त हो जाता है तो उसकी जीवन क्षमता नष्ट हो जाती है। बीज के कट जाने, गल जाने, रोग के प्रभाव या भण्डारण के दोषों के कारण भ्रूण की जीवन क्षमता नष्ट हो सकती है। अतः बीज को बोने से पहले प्रयोग द्वारा उसकी जीवन क्षमता ज्ञात करना लाभदायक रहता है।

बीजोत्पादन (Seed Production)

वैज्ञानिकों द्वारा उन्नत किस्मों का उत्पादन एवं विकास निरन्तर किया जा रहा है। प्रारम्भिक अवस्था में विकसित उन्नत बीज की मात्रा अत्यन्त सीमित होती है। अतः यह आवश्यक है कि निर्धारित मापदण्डों की पालना करते हुए इन बीजों का गुणन किया जाना चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार उन्नत किस्मों के बीज सभी किसानों को समय पर उपलब्ध हो सके। उन्नत बीजों का गुणन प्रायः राजकीय फार्म, विश्वविद्यालय के कृषि फार्म एवं प्रगतिशील कृषकों के खेतों पर प्रमाणित बीज उत्पादन कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जाता है। किसी भी फसल के उत्तम बीज प्रयोगशाला से किसानों तक निम्नलिखित उन्नत बीजों की चार श्रेणियों (बीजों के प्रकार) में उत्पादित होकर पहुँचता है। इनका विवरण निम्न प्रकार है –

1. **मूल केन्द्रक बीज या न्यूक्लियस सीड (Nucleous seed) :** मूल केन्द्रक बीज किसी उन्नत किस्म के बीजों की वह प्रारम्भिक मात्रा है जो सम्बन्धित पादप प्रजनक के पास होती है। यह बीज शत–प्रतिशत शुद्ध होता है। इनका उत्पादन पादप–प्रजनक की देख–रेख में किया जाता है।

2. **प्रजनक बीज या ब्रीडर सीड (Breeder seed) :** न्यूक्लियस सीड के गुणन के बाद जो बीज प्राप्त होता है वह ब्रीडर सीड कहलाता है। आनुवंशिक एवं भौतिक दृष्टि से यह बीज भी शत–प्रतिशत शुद्ध होता है तथा पादप प्रजनक की देख–रेख में कृषि अनुसंधान केन्द्रों पर उत्पन्न किया जाता है। इस प्रकार के बीजों की थैली पर सुनहरे पीले रंग का टैग लगा रहता है और यह आधार बीज का स्रोत होता है।

3. **आधार बीज (Foundation seed) :** प्रजनक बीज से जो बीज पैदा किया जाता है उसे आधार बीज कहते हैं। आधार बीज का उत्पादन बीज प्रमाणीकरण संस्था की देख–रेख में किया जाता है। इसकी आनुवंशिक शुद्धता 98 प्रतिशत तक होती है। इस प्रकार के बीजों की थैली पर सफेद रंग का टैग लगा रहता है और यह प्रमाणित बीज का स्रोत होता है।

4. **प्रमाणित बीज (Certified seed) :** आधार बीज से प्रमाणित बीज उत्पन्न किया जाता है। इसका उत्पादन प्रमाणीकरण संस्था की देख–रेख में किया जाता है और यह प्रमाण पत्र दिया जाता है कि इसकी आनुवंशिक व भौतिक शुद्धता, अंकुरण प्रतिशत एवं आर्द्रता मात्रा आदि प्रमाणीकरण मानकों के अनुरूप है। इस प्रकार के बीजों की थैली पर नीले रंग का टैग लगा रहता है और यह किसानों को फसल उत्पादन के लिए बेचा जाता है।

उत्तम बीज उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक

बीज उत्पादन कार्यक्रम एक प्रणाली है जिसके अन्तर्गत तैयार किये गये आधार बीज का गुणन कृषकों द्वारा कृषकों के लिए किया जाता है। बीज उत्पादन प्रक्रिया एक ऐसी वैज्ञानिक विधि है जिसके द्वारा आनुवंशिक शुद्धता, उच्च अंकुरण क्षमता, रोग रहित व अधिक पैदावार की क्षमता वाले बीजों का उत्पादन किया जाता है। इसके लिए प्रमाणीकरण प्रक्रिया के मापदण्डों की पालना करनी होती है। प्रत्येक फसल के लिए भिन्न–भिन्न पृथक्करण दूरी एवं बीज के न्यूनतम मापदण्ड निर्धारित किये हुए हैं जिनका पालन अत्यन्त आवश्यक है। अतः कृषक को बीज उत्पादन कार्यक्रम में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए ताकि उत्तम गुणवत्तायुक्त बीजों का उत्पादन हो सके।

फसल	पृथक्करण दूरी (मीटर)	
	आधार बीज	प्रमाणित बीज
जौ, गेहूँ, जई व धान	3	3
मक्का की संकुल किस्में	400	200
संकर मक्का	600	300
ज्वार	200	100
चना	10	5
सोयाबीन, मूंगफली	3	3

1. **बीज का चुनाव :** बीज उत्पादन हेतु प्रजनक / आधार / प्रमाणित बीज ही प्रयोग में लेना चाहिए एवं इसमें अन्य बीजों का मिश्रण नहीं होना चाहिए। बीज मान्यता प्राप्त बीज उत्पादक संस्थानों या विश्वविद्यालयों अथवा मान्यता प्राप्त संस्थानों से ही क्रय करना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि बीज की किस्म कृषि जलवायु खण्ड में सिफारिश की गई हो तथा उपयुक्त पैदावार देती हो। बीजों को बीज जनित रोगों से बचाव हेतु फफूंदनाशी, कीटनाशी एवं शाकाणु संवर्ध से अवश्य उपचारित करें। बीजों के खाली कट्टे, टैग, लेबल, बिल इत्यादि को सुरक्षित रखें जिससे प्रमाणीकरण संस्था द्वारा मांगने पर प्रस्तुत किये जा सके।

2. **पृथक्करण दूरी व खेत का चयन (Isolation distance and field selection) :** आनुवंशिक शुद्धता को बनाए रखने के लिए फसल की किन्हीं दो किस्मों के मध्य निश्चित दूरी बनाये रखना आवश्यक है। यह दूरी पृथक्करण दूरी (Isolation distance) कहलाती है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस फसल का बीज उत्पादन कार्यक्रम ले रहे हैं उसके चारों ओर एक निर्धारित दूरी तक दूसरे खेतों में वह फसल नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक फसल के लिए बीज उत्पादन हेतु अलग–अलग पृथक्करण दूरी की सिफारिश की गयी है क्योंकि कुछ फसलों में परपरागण होता है तथा कुछ फसलों में स्वपरागण होता है। अतः बीजोत्पादन हेतु खेत के चयन में यह ध्यान रखें कि फसल के लिए उपयुक्त पृथक्करण दूरी उपलब्ध है अन्यथा परपरागण से बीजों की आनुवंशिक शुद्धता नहीं रह पायेगी। प्रमुख फसलों की पृथक्करण दूरी सारणी के अनुसार है।

बीज उत्पादन के लिए विभिन्न फसलों की पृथक्करण दूरी (Isolation distance)

खेत का चयन करते समय यह भी ध्यान रखें कि खेत में पिछले मौसम में उस फसल को न उगाया गया हो जिसका बीज उत्पादन लिया जा रहा है, क्योंकि कुछ फसलों के बीज कटाई के समय खेत में गिर जाते हैं तथा दूसरे मौसम में उग आते हैं जिससे फसल में अन्य किस्मों का मिश्रण हो जाता है। अतः खेत स्वैच्छिक उगे पौधों से मुक्त होना चाहिए।

3. **उन्नत सस्य क्रियाएँ :** बीज उत्पादन में सभी उन्नत सस्य क्रियाओं एवं कीट व रोग नियंत्रण की अनुमोदित सिफारिशों का अनुसरण करना चाहिए जैसे –

(अ) बुआई पूर्व सीड ड्रिल को अच्छी तरह से साफ कर लें तथा यह निश्चित कर लें कि सीड ड्रील में कोई अन्य बीज नहीं है।

(ब) सिफारिशानुसार सन्तुलित उर्वरकों का प्रयोग करें।

(स) फसल की क्रान्तिक अवस्थाओं पर सिंचाई अवश्य करें।

(द) फसल में उचित समय पर निराई–गड़ाई अवश्य करें ताकि बीजों में खरपतवार के बीजों का मिश्रण न हो।

(य) समय–समय पर खेत का निरीक्षण करते रहें तथा अन्य किस्मों के पौधों व अन्य भिन्न पौधों को वानस्पतिक, फूलों के रंग, फलियों के आकार आदि में भिन्नता के आधार पर उखाड़कर खेत से बाहर फेंक देना चाहिए। यह क्रिया रोगिंग (Rouging) कहलाती है। रोगिंग इस तरह करनी चाहिए जिससे बीजों की गुणवत्ता एवं आनवंशिक शुद्धता का स्तर निर्धारित मापदण्डों से कम न हों। जिस फसल एवं किस्म का बीज उत्पादन कार्यक्रम लिया गया है उसके अतिरिक्त खेत में अन्य फसल, अन्य किस्म, असमान पौधे, रोग ग्रस्त पौधे एवं खरपतवार का एक भी पौधा नहीं होना चाहिए।

(र) आवश्यकतानुसार पौध संरक्षण उपाय करें।

(ल) फसल की उचित समय (बीज के पूर्ण पकने) पर कटाई करें।

4. **गहाई :** गहाई करते समय निम्न बातों का अवश्य ध्यान रखें जिससे बीज की भौतिक शुद्धता बनी रहे।

(अ) खलिहान को अच्छी प्रकार साफ कर लें।

(ब) गहाई मशीन को खलिहान पर ले जाने से पूर्व भलीभांति साफ कर यह सुनिश्चित कर लें कि मशीन में अन्य फसलों व किस्मों के बीज नहीं है।

(स) थ्रेसर का आर.पी.एम. निश्चित कर लें जिससे बीज टूटे नहीं।

(द) जहाँ तक संभव हो बीज हेतु नई बोरियाँ ही काम में लें। यदि पुरानी बोरियाँ काम में लेनी हो तो उनको पलटकर झाड़ लें एवं अन्य बीजों को निकाल लें।

(य) बीज को बोरों में भरने से पूर्व निर्धारित नमी तक सुखा लेना चाहिए।

5. विधायन एवं भण्डारण : उत्तम बीज की गुणवत्ता उसके सावधानीपूर्वक किये गये विधायन एवं भण्डारण पर बहुत निर्भर करती है। गहाई करने के बाद बीज को बोरियों में भरकर विधायन केन्द्रों पर प्रसंस्करण (Processing) हेतु भेजा जाता है। विधायन क्रिया में बीज को अच्छी प्रकार सुखाकर मशीनों द्वारा साफ कर वर्गीकृत किया जाता है व आवश्यक बीजोपचार के पश्चात् उपयुक्त आकार के कट्टे व थैलियों में भरकर प्रपत्र के साथ सिल दिया जाता है। वर्गीकरण द्वारा एक ही आकार एवं वजन के पुष्ट बीजों का चयन कर अन्य छोटे, कटे एवं हल्के बीजों को निकाल दिया जाता है। सफाई प्रक्रिया में भौतिक अशुद्धियों और अवांछित एवं आपत्तिजनक खरपतवार के बीजों को अलग कर देते हैं। बीजों को उचित नमी पर बोरों में भरकर गोदाम में रखें। भण्डारण उपरान्त गोदाम को धूमीकरण कर बन्द कर दें। समय–समय पर गोदाम का निरीक्षण करते रहना चाहिए।

इस प्रकार प्रमाणित बीज का उत्पादन भी एक प्रकार का विज्ञान है जिसके लिए वैज्ञानिक दक्षता आवश्यक है। अतः बीज उत्पादन के लिए प्रमाणीकरण संस्था की देख–रेख की आवश्यकता होती है। इसलिए भारत में यह कार्य राष्ट्रीय बीज निगम तथा राजस्थान में राजस्थान राज्य बीज निगम करती है।

बीज की सुषुप्तावस्था (Seed Dormancy)

सुषुप्तावस्था अथवा प्रसुप्ति काल बीज की वह अवस्था है जब इसकी सक्रिय वृद्धि कुछ काल के लिये निलम्बित हो जाती है। यह निलम्बन अल्प अथवा दीर्घ काल के लिये हो सकता है। वास्तविकता में सुषुप्तावस्था का अभिप्राय है कि पूर्णतः परिपक्व बीज अन्य सभी परिस्थितियों के सामान्य होने पर भी अंकुरित नहीं हो पाता है जो अन्यथा अंकुरण के लिये आवश्यक होती है। सुषुप्तावस्था में बीज की स्वयं की संरचनात्मक या रासायनिक अथवा कार्यिकीय विशिष्टताओं के कारण अंकुरण नहीं हो पाता है।

सुषुप्तावस्था के प्रकार

उत्पत्तिनुसार सुषुप्तावस्था तीन प्रकार की मानी गई है –

1. प्राथमिक सुषुप्तावस्था (Primary dormancy)
2. द्वितीयक सुषुप्तावस्था (Secondary dormancy)
3. बलकृत सुषुप्तावस्था (Enforced dormancy)

प्राथमिक सुषुप्तावस्था (Primary dormancy)

यह एक प्रकार से प्राकृतिक सुषुप्तावस्था है जिसका सम्बन्ध बीज की स्वयं की कार्यिकीय विशेषताओं से है। जब फसल पकने लगती है तो कुछ बीज शुष्क भार के आधार पर परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं परन्तु ये अंकुरित होने योग्य नहीं होते हैं। दूसरे शब्दों में ये बीज सुषुप्तावस्था काल में ही है। ऐसी सुषुप्तावस्था बीज के शुष्क भण्डारण से दूर की जा सकती है। यह सुषुप्तावस्था बीज कवच **(Seed coat)**की कठोरता, भ्रूण **(Embryo)**के अल्प विकास, प्रकाश आवश्यकता अथवा रासायनिक कारणों से हो सकती है।

द्वितीयक सुषुप्तावस्था (Secondary dormancy)

यह एक प्रकार से प्रेरित सुषुप्तावस्था (Induced dormancy) है। सामान्य परिस्थितियों के अभाव में बीज अंकुरित नहीं हो पाता है। अतः असामान्य परिस्थितिवश बीज सुषुप्तावस्था प्राप्त कर लेता है।

बलकृत सुषुप्तावस्था (Imposed/ Enforced dormancy)

इस प्रकार की सुषुप्तावस्था बीजों के मृदा में अधिक गहराई में चले जाने के कारण होती है। इसके मुख्य कारण है प्रतिकूल तापक्रम, प्रकाश का पूर्ण अभाव, कार्बन–डाईऑक्साइड की अधिकता व मृदा का अधिक भार। जैसे ही ये बीज मृदा के ऊपर की ओर आते हैं ये अंकुरण योग्य हो जाते हैं। बलकृत सुषुप्तावस्था अधिकांशतः खरपतवार के बीजों में उत्पन्न होती है। अंकुरण हेतु आवश्यकताओं जैसे नमी (Moisture) व गैसों (Gases) के प्रति अपारगम्य होते हैं, जिससे बीज अंकुरित ना होकर सुषुप्त हो जाता है। पूर्ण भ्रूण विकास से पूर्व ही कठोर कवच निर्माण से भी बीजों में सुषुप्तावस्था आ जाती है।

कई प्रकार के पादप अंतःस्राव (Plant hormones) व अंकुरण निरोधी (Germination inhibitors) व अन्य जैव रसायन बीज के आवरण, भ्रूण या भ्रूणपोष में उपस्थित होते हैं तथा ये भी सुषुप्तावस्था को नियंत्रित करते हैं।

बीज सुषुप्तावस्था को भंग करने की विधियाँ

सुषुप्तावस्था को भंग करने की विधि व समय सुषुप्तावस्था के कारण व प्रकार पर निर्भर करती है। ऐसे कृत्रिम उपचार निम्न हो सकते हैं –

1. प्रकाश से उपचार (Light treatment)

2. ताप से उपचार
   (i) तापीय एकान्तरण (Alternating temperature)
   (ii) शीतन (Chilling)
   (iii) उच्च ताप (High temperature)
3. पश्य परिपक्वन (Post maturation)
4. क्षय चिह्न (Scarification)
   (i) भौतिक (Physical)
   (ii) रासायनिक (Chemical)
5. रसायनों से उपचार उदाहरणार्थ वृद्धि नियामक जैसे कि जिब्बरलिंस, साइटोकाइनिंस व इथालीन, पादप उत्पाद, श्वसन निरोधक ऑक्सीकारक, नाइट्रोजन/सल्फर युक्त यौगिक।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. विज्ञान की वह शाखा जिसमें फसल उत्पादन व मृदा प्रबन्धन के सिद्धान्तों व क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, शस्य विज्ञान कहलाती है।
2. शस्य विज्ञान द्वारा कर्षण, उन्नत बीज, खाद व उर्वरक, सिंचाई व खरपतवार प्रबन्धन, पौध संरक्षण, कटाई, गहाई, भण्डारण व प्रक्रमण का समाधान किया जाता है।
3. मृदा उर्वरता को प्राकृतिक कारक एवं कृत्रिम कारक प्रभावित करते हैं।
4. फसल उत्पादन की अनुकूल परिस्थितियों में किसी मृदा की फसल पैदा करने की क्षमता को मृदा उत्पादकता कहते हैं। इसे साधारणतया रुपयों में या प्रति हैक्टर उपज के रूप में मापते हैं।
5. उत्पादक मृदा निश्चित रूप से उर्वर होती है परन्तु उर्वर मृदा सदैव उत्पादक नहीं हो सकती।
6. भूमि के कणों को अपने स्थान से हटने एवं अन्यत्र स्थानान्तरित होने की क्रिया को मृदा क्षरण कहते हैं। मृदा क्षरण दो प्रकार का होता है (1) प्राकृतिक क्षरण, (2) त्वरित क्षरण।
7. मृदा को विभिन्न क्षरण शक्तियों द्वारा काटने एवं स्थानान्तरित होने से बचाने के उपायों को मृदा संरक्षण कहते हैं।
8. बीज चार प्रकार के होते हैं यथा (अ) केन्द्रक बीज (ब) प्रजनक बीज (स) आधार बीज एवं (द) प्रमाणित बीज। किसी भी फसल का उत्तम बीज प्रयोगशाला से किसानों तक उपरोक्त चार चरणों में उत्पादित होकर पहुँचता है।
9. बीजोत्पादन में आनुवंशिक शुद्धता को बनाये रखने के लिए फसल की किन्हीं दो किस्मों के मध्य एक निश्चित दूरी बनाये रखना आवश्यक है जिसे पृथक्करण दूरी कहते हैं। भिन्न–भिन्न फसलों के लिए अलग–अलग पृथक्करण दूरी होती है।
10. सुषुप्तावस्था बीज की वह अवस्था है जब इसकी सक्रिय वृद्धि कुछ काल के लिए निलम्बित हो जाती है, जिससे बीज का अंकुरण नहीं हो पाता है। ये प्राकृतिक, द्वितीयक अथवा बलकृत होती है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. एग्रोनोमी किस भाषा के शब्दों से बना है –
   (अ) ग्रीक (ब) जर्मन
   (स) भारतीय (द) अंग्रेजी
2. मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाला प्राकृतिक कारक है –
   (अ) पैतृक पदार्थ (ब) जलाक्रान्ति
   (स) मृदा पी.एच. (द) मृदा जुताई का ढंग
3. मृदा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक हैं –
   (अ) मृदा उर्वरता (ब) मृदा की भौतिक दशा
   (स) मृदा की स्थिति (द) उपरोक्त सभी
4. निम्न में से कौनसा वृक्ष रेगिस्तानी क्षेत्रों में पाया जाता है जो वायु क्षरण को रोकने में सहायक है –
   (अ) खेजड़ी (ब) सेवन
   (स) अंजन (द) न्यूटन्स
5. आधार बीज का स्रोत है –
   (अ) केन्द्रक बीज (ब) प्रजनक बीज
   (स) प्रमाणित बीज (द) इसमें से कोई नहीं
6. प्रमाणित बीज पर किस रंग का टैग लगा रहता है?
   (अ) पीले रंग का (ब) सफेद रंग का
   (स) नीले रंग का (द) काले रंग का

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

7. शस्य विज्ञान को परिभाषित कीजिए।
8. शस्य विज्ञान की आवश्यकता किन क्षेत्रों में है?
9. मृदा उत्पादकता को परिभाषित कीजिए।
10. मृदा क्षरण की परिभाषा लिखिये।
11. मृदा क्षरण को रोकने के लिए उगाये जाने वाले वृक्षों के नाम लिखें।
12. स्थलाकृति का जल क्षरण से क्या सम्बन्ध है?
13. बीज की परिभाषा लिखिये।
14. पृथक्करण दूरी से क्या अभिप्राय है?
15. बलकृत सुषुप्तावस्था क्या होती है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

16. कृषि में शस्य विज्ञान की क्या भूमिका है?
17. शस्य विज्ञान कला, विज्ञान व व्यवसाय का संयोजन क्यों

कहलाता है?

18. मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता में अन्तर लिखिए।
19. वायु द्वारा क्षरण की प्रक्रिया को समझाइये।
20. मृदा संरक्षण में पलवार (Mulching) का क्या महत्त्व है?
21. बीजोत्पादन के लिए बीज का चयन करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
22. बीज के विभिन्न प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

23. मृदा उर्वरता से क्या अभिप्राय है? इसको प्रभावित करने वाले कारकों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
24. वायवीय क्षरण का राजस्थान में क्या महत्त्व है?वायु द्वारा क्षरण को रोकने की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये।
25. मृदा संरक्षण की परिभाषा लिखिये। जलीय क्षरण के परिपेक्ष्य में सस्य सम्बन्धी विधियों की विवेचना कीजिए।
26. उत्तम बीज के गुण एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

उत्तरमाला

1. (अ) 2. (अ) 3. (द) 4. (अ) 5. (ब) 6. (स)